शिक्षा संवाद
2023, 10 (2): 23-31
ISSN: 2348-5558
©2023, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

कहानी

रेल की रात

इलाचंद्र जोशी

गाड़ी आने के समय से बहुत पहले ही महेंद्र स्टेशन पर जा पहुँचा था। गाड़ी के पहुँचने का ठीक समय मालूम न हो, यह बात नहीं कही जा सकती। जिस छोटे शहर में वह आया हुआ था, वहाँ से जल्दी भागने के लिए वह ऐसा उत्सुक हो उठा था कि जान-बूझ कर भी अज्ञात मन से शायद किसी अबोध बालक की तरह वह समझा था कि उसके जल्दी स्टेशन पर पहुँचने से संभवत: गाड़ी भी नियत समय से पहले ही आ जाएगी।
होल्डाल में बँधे हुए बिस्तरे और चमड़े के एक पुराने सूटकेस को प्लेटफ़ार्म के एक कोने पर रखवा कर वह चिंतित तथा अस्थिर-सा अन्यमनस्क भाव से टहलते हुए टिकट-घर की खिड़की के खुलने का इंतिज़ार करने लगा।

महेंद्र की आयु बत्तीस-तैंतीस वर्ष के लगभग होगी। उसके क़द की ऊँचाई साढ़े पाँच फ़ीट से कम नहीं मालूम होती थी। उसके शरीर का गठन देखने से उसे दुबला तो नहीं कहा जा सकता, तथापि मोटा वह नाम का भी न था। रंग उसका गेहुँआ था, कपोल कुछ चौड़ा, भौंहें कुछ मोटी किंतु तनी हुई, आँखें छोटी पर लंबी, काली मूँछें घनी पर पतली और दोनों सिरों पर कुछ ऊपर को उठी थीं। वह खद्दर का एक लंबा कुरता और खद्दर की धोती पहने था। सर पर टोपी नहीं थी। पाँवों में घड़ियाल के चमड़े के बने हुए चप्पल थे। उसके व्यक्तित्व में आकर्षण अवश्य था, पर वह आकर्षण सब समय सब व्यक्तियों की दृष्टि को अपनी ओर नहीं खींचता था।
सूरज बहुत पहले डूब चुका था और शुक्ल पक्ष का अपूर्ण गोलाकार चंद्रमा अपने किरण-जाल से दिग्-दिगंत को स्निग्ध आलोक-छटा से विभासित करने लगा था। स्टेशन पर

अधिक भीड़ न थी। प्लेटफ़ार्म पर टहलते-टहलते पूर्व की ओर क़दम निकल जाने पर ऐसा मालूम होने लगता था कि चाँदनी दीर्घ-विस्तृत समतल भूमि पर अलस क्लांति की तरह पड़ी हुई है। झिल्ली-झनकार का एकांतिक मर्मर स्वर इस अलसता की वेदना को निर्मम भाव से जगा रहा था, जिससे महेंद्र के हृदय की सुप्त व्याकुलता तिलमिला उठती थी।

सिगनल डाउन हो गया था। टिकट-घर खुल गया था। थर्ड क्लास का टिकट ख़रीद कर महेंद्र गाड़ी का इंतिज़ार करने लगा। थोड़ी देर में दूर ही से सर्चलाइट के प्रखर प्रकाश से तिमिर-विदारण करती हुई गाड़ी दिखाई दी और झक-झक करती हुई स्टेशन पर आ खड़ी हुई।
सामने के कंपार्टमेंट में केवल दो व्यक्ति बैठे थे और वे भी उतरने की तैयारी कर रहे थे। महेंद्र एक हाथ में बिस्तर की गठरी और दूसरे हाथ से सूटकेस पकड़ कर उसी में जा घुसा। जो दो व्यक्ति कंपार्टमेंट में थे, उनके उतरते ही एक चश्माधारी सज्जन ने दो महिलाओं के साथ भीतर प्रवेश किया। कुली ने आ कर नवागंतुक महाशय का सामान भीतर रख दिया और मज़ूरी के संबंध में काफ़ी हुज्जत करने के बाद पैसे ले कर चला गया। चश्माधारी सज्जन महिलाओं के साथ महेंद्र के सामने वाले बेंच पर बड़े आराम से बैठ गए। मालूम होता था कि वह बड़ी हड़बड़ी के साथ गाड़ी के आने के कुछ ही समय पहले स्टेशन पहुँचे थे और घबराहट में थे, कि महिलाओं को साथ ले कर यदि किसी कंपार्टमेंट में जगह न मिली, तो क्या हाल होगा। वह अभी तक हाँफ रहे थे, जिससे उनकी अब तक की परेशानी स्पष्ट व्यक्त होती थी। अब जब आराम से बैठने को ख़ाली जगह मिल गई, तो एक लंबी साँस ले कर चश्मा उतार कर रूमाल से मुँह का पसीना पोंछने लगे। पसीना पोंछते-पोंछते महेंद्र की ओर देख कर उन्होंने प्रश्न किया, 'शिकोहाबाद कै बजे गाड़ी पहुँचेगी, आप बता सकते हैं?'

महेंद्र ने उत्तर दिया, 'जहाँ तक मेरा ख़याल है, बारह बजे के क़रीब पहुँचेगी।'
महेंद्र कनखियों से महिलाओं की ओर देख रहा था। महिलाएँ उसके एकदम सामने बैठी थीं और यदि दृष्टि सीधी करके स्वाभाविक रूप से उन्हें देखता रहता, तो भी शायद न तो चश्माधारी सज्जन को और न महिलाओं को कोई आपत्ति होती, पर उसे अपनी स्वाभाविक संकोचशीलता के कारण उनकी ओर स्थिर दृष्टि से देखने का साहस नहीं होता था। दोनों महिलाएँ बेपर्दा बैठी थीं। उनमें एक की अवस्था प्राय: पैंतीस वर्ष की होगी, वह एक सफ़ेद चादर ओढ़े खड़ी थी, दूसरी बाईस-तेईस वर्ष की जान पड़ती थी, वह एक गुलाबी रंग की सुंदर, सुरुचिपूर्ण साड़ी पहने थी। दोनों यथेष्ट सभ्य और सुशील जान पड़ती थीं। ज्येष्ठा के

देखने से ऐसा अनुमान लगाया जा सकता था कि किसी समय वह सुंदर रही होगी, पर अब अस्वस्थता के कारण उसका मुखमंडल बिलकुल निस्तेज जान पड़ता था। कनिष्ठा यद्यपि सौंदर्य-कला की दृष्टि से सुंदरी नहीं थी, तथापि उसके मुख की व्यंजना में एक ऐसी सरल मधुरिमा वर्तमान थी, जो बरबस आँखों को आकर्षित कर लेती थी।

आज कई कारणों से महेंद्र का जी दिन भर अच्छा नहीं रहा। गाड़ी में बैठने तक वह चिंतित, अन्यमनस्क तथा उदास था। पर गाड़ी में बैठते ही शिष्ट, सुशील तथा सुंदरी महिलाओं के साहचर्य से उसके खिन्न मन में एक सुखद सरलता छा गई। यद्यपि वह संकोच के कारण कुछ कम घबराया हुआ न था, तथापि चश्माधारी सज्जन की भोली आकृति तथा सरल भाव-भंगिमाओं से और महिलाओं की शालीनता से उसे इस बात पर धीरे-धीरे विश्वास होने लगा था कि उनके बीच किसी प्रकार का संकोच अनावश्यक ही नहीं बल्कि अशोभन भी है।
चश्माधारी सज्जन ने चश्मा उतार कर एक रूमाल से उसे पोंछते हुए पूछा, 'आप क्या शिकोहाबाद जा रहे हैं?'

'जी नहीं, मैं दिल्ली जा रहा हूँ। क्या आप शिकोहाबाद में ही रहते हैं?'
'जी नहीं, मुझे टुँडला जाना है। मैं वहाँ कोर्ट में प्रैक्टिस करता हूँ। इधर कुछ दिनों के लिए घर आया हुआ था। अब अपनी 'वाइफ़' को और 'सिस्टर' को ले कर वापस जा रहा हूँ। 'सिस्टर' की तबीअत ठीक नहीं रहती, इसलिए उसे हवा-बदली के लिए ले जा रहा हूँ।'

एक साधारण-से प्रश्न के उत्तर में इतनी बातों से परिचित होने पर महेंद्र को नवपरिचित सज्जन की बे-तकल्लुफ़ी पर आश्चर्य हुआ और वह मन ही मन मुस्कराने लगा। उसने अनुमान लगाया कि ज्येष्ठा महिला 'सिस्टर' होगी और कनिष्ठा 'वाइफ़'।
थोड़ी देर में गाड़ी चलने लगी। कोई दूसरा यात्री उस डिब्बे में न आया।

चश्माधारी महाशय गाड़ी चलने के कुछ देर बाद ऊँघने लगे। वे रह न सके और बँधे हुए बिस्तर को तकिया बना कर एक दूसरे बेंच पर लेट गए और लेटते ही ख़र्राटे लेने लगे। न जाने क्यों, महेंद्र के मन में यह विश्वास जम गया कि इन नवपरिचित महाशय का जीवन बड़ा सुखी है। उनकी बे-तकल्लुफ़ी तथा उनके मुख का आत्म-संतोषपूर्ण भाव देख कर उनके मन

में यह विश्वास जमने लगा था और जब उसने उन्हें निश्चिंत सोते हुए तथा ख़र्राटे भरते देखा, तो उसकी यह धारणा दृढ़ हो गई।

ज्येष्ठा महिला ने भी थोड़ी देर में ऊँघना शुरू कर दिया। वह ऊँघती जाती थी और बीच-बीच में जब ज़बर्दस्त हिचकोला खाती थी तो जाग पड़ती थी। केवल कनिष्ठा महिला पूर्णत: सजग थी। वह कभी खिड़की के बाहर झाँक कर चाँदनी के उज्ज्वल आलोक में शायद 'पल-पल परिवर्तित' प्राकृतिक दृश्यों का आनंद लेती थी, कभी ऊँघने वाली महिला की ओर देखती थी, कभी ख़र्राटे भरने वाले महाशय, शायद अपने पति को एक बार सरसरी निगाह से देख लेती थी और कभी महेंद्र को स्निग्ध किंतु विस्मय की उत्सुकता से पूर्ण आँखों से देखने लगती थी। उन आँखों की स्थिर दृष्टि जब महेंद्र पर आ कर पड़ती थी तो, उसे ऐसा मालूम होने लगता कि मोहाविष्ट हुआ जा रहा है और उसकी सारी आत्मा, यहाँ तक कि सारा शरीर भी अपना रूप बदल रहा है और यह किसी अव्यक्त तथा अतींद्रिय मायावी स्पर्श से कुछ का कुछ हुआ जा रहा है। वह उस स्थिर दृष्टि का तेज़ सहन न कर सकने के कारण आँखें फिरा लेता था।

गाड़ी टटर-टट्ट-टटर-टट्ट शब्द से चली जा रही थी। जाग्रत महिला की गुलाबी साड़ी का आँचल हवा के झोंके से नीचे खिसक कर उसके लहराते हुए घनकुंचित काले केशों की बहार दिखा रहा था। गुलाबी साड़ी भी हवा के ज़ोर से फ़र-फ़र फ़हरा रही थी। महेंद्र पूर्ण जाग्रत अवस्था में स्वप्न देखने लगा। उसे यह भी भ्रम होने लगा कि यह महिला, जो इसके पहले उसके लिए एकदम अज्ञात थी और निश्चय ही सदा अज्ञात रहेगी, न जाने किस चिदानंदमय लोक से अकस्मात आविर्भूत हो कर उसके पास आ बैठी है और गुलाबी रंग की पताका फ़हरा कर विश्व-विजय को निकली है और वह उसका सारथी बन कर उस अनंतगामी रेल रूपी रथ पर चला जा रहा है। सारा विश्व, समस्त मानवी तथा मानसी सृष्टि उसके लिए उस कंपार्टमेंट के भीतर समा गई थी, जिसमें ऊँघनेवाली महिला तथा सोए हुए सज्जन का कोई अस्तित्व नहीं था, और उसके बाहर क्षण-क्षण में परिवर्तित होने वाले अस्थिर माया जगत का चिर चंचल रूप एकदम असत्य सत्ताहीन-सा लगता था।

महेंद्र सोचने लगा कि उसने जीवन में कितनी ही स्त्रियों को विभिन्न रूपों तथा विचित्र परिस्थितियों में देखा है, पर आज का यह बिलकुल साधारण-सा अनुभव उसे क्यों ऐसा अपूर्व तथा अनुपम लग रहा है। वह सोच ही रहा था कि फिर उस विश्व-विजयिनी ने अपनी सुंदर विस्मित आँखों की रहस्यमयी उत्सुकता से भरी स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह

मन ही मन संबोधित करते हुए कहने लगा, चिर अज्ञाता, चिर अपरिचिता देवी! तुम मुझसे क्या चाहती हो। तुम्हारी इस मर्मभेदिनी दृष्टि का क्या अर्थ है? दैवयोग से महाकाल के इस नगण्यतम क्षण में, जिसकी सत्ता महासागर में एक क्षुद्रतम बुदबुदे के बराबर भी नहीं है, हम दोनों का आकस्मिक मिलन घटित हुआ है, और महासागर में बुदबुदे की तरह यह क्षण सदा के लिए विलीन हो जाएगा। तथापि इतने ही अर्से में क्या तुम हम दोनों के जन्मांतर के संबंध से परिचित हो गई अथवा यह सब कुछ नहीं है? तुम्हारी आँखों की उत्सुकता का कोई मूल्य नहीं है, मेरी विह्वल भावुकता का कोई महत्व नहीं है! महत्वपूर्ण जो कुछ है, वह है तुम्हारे पास लेटे हुए व्यक्ति का ख़र्राटे भरना।

शिकोहाबाद पहुँचने पर चश्माधारी सज्जन की नींद न टूटी और ज्येष्ठा महिला ऊँघती रही। पर महेंद्र की विश्व-विजयिनी की आँखों में एक क्षण के लिए भी निद्रा-रसावेश का लेश नहीं दिखाई दिया। वह बीच-बीच में अपनी मर्म-भेदिनी दृष्टि की प्रखर उत्सुकता से उसके हृदय को अकारण निर्मम रूप से बिद्ध करती चली जाती थी। फलस्वरूप महेंद्र की गुलाबी मोहकता भी शिकोहाबाद पहुँचने तक अखंड बनी रही।
शिकोहाबाद पहुँचने पर विश्व-विजयिनी ने चश्माधारी सज्जन के किंचित स्थूल शरीर को हाथ से हिलाते हुए जगाया। ऊँघती हुई महिला भी सँभल कर बैठ गई। कुलियों से सामान उतरवा कर चारों व्यक्ति उतर पड़े। दिल्ली वाली गाड़ी जिस प्लेटफ़ार्म पर लगने वाली थी, वहाँ को जाने के लिए पुल पार करना पड़ा। पुल पार करके वे लोग जिस प्लेटफ़ार्म पर आए, वहाँ कहीं एक भी बत्ती जली हुई नहीं थी। पर चूँकि सर्वत्र निर्मल चाँदनी छिटक रही थी, इसलिए बत्ती की कोई आवश्यकता न जान पड़ी। गाड़ी के आने में अभी डेढ़ घंटे की देर थी। चश्माधारी महाशय एक बेंच पर बिस्तर फैला कर लेट गए। दोनों महिलाएँ भी नीचे रखे हुए सामान के ऊपर बैठ गईं।

चश्माधारी सज्जन ने महेंद्र से कहा, 'आप भी किसी बेंच पर बिस्तर बिछा कर लेट जाइए।'
पर कोई बेंच ख़ाली नहीं थी और न महेंद्र सोने के लिए ही उत्सुक था। आज की रेलवे यात्रा की चंद्रोज्ज्वल रात्रि उसे चिरजाग्रत तथा चिरजीवित स्वप्न-लोक में विचरण का अवसर दे रही थी। वह प्लेटफ़ार्म पर टहलते हुए अपने अंतर्मन में नवोद्घाटित जीवन-वैचित्र्य की चहल-पहल देख कर विस्मित हो रहा था। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि वह जीवन की मधुरिमा से आज प्रथम बार परिचित हो रहा था। रेलवे लाइन के उस पार दिगंत विस्तृत ज्योत्स्ना-

राशि अपने आवेश में स्वयं पुलकित हो रही थी और सामने काफ़ी दूर पर दो रक्तरंजित गोलाकार प्रकाश-चिह्न आकाश-दीप की तरह मानो आनंदोज्ज्वल रंगीन जीवन का मार्ग उसके लिए इंगित कर रहे थे। रेलगाड़ी में हो कर वह अनेक बार आया था और गया था और कितनी ही बार उसे रात के समय स्टेशनों पर गाड़ी के इंतिज़ार में ठहरना पड़ा था, पर आज की ऐंद्रजालिक उल्लासपूर्ण अनुभूति उसके लिए एकदम नई थी। इस बार इंद्रजाल के उद्घाटन का श्रेय जिसको था, वह मायाविनी इस समय टीन की छत के नीचे की छाया में बैठी हुई थी और अंधकार में उसकी आँखों के जादू का चलना बंद हो गया था। पर वहाँ पर मात्र उसका अस्तित्व ही महेंद्र की आत्मा में मायालोक की मोहकता का सृजन करने के लिए पर्याप्त था।

वह टहलते-टहलते न मालूम किन निरुद्देश्य स्वप्नों की माया के फेर में पड़ा हुआ था कि अचानक चश्माधारी महाशय ने बेंच पर से पुकारते हुए कहा, 'अरे जनाब, कब तक टहलिएगा। अगर लेटना नहीं चाहते, तो यहाँ पर बैठ तो जाइए। नींद तो अब आवेगी नहीं। इसलिए गाड़ी के आने तक गप-शप ही रहे।' महाशयजी पहले ही काफ़ी सो चुके थे इसलिए अब नींद नहीं आ रही थी। महेंद्र मुस्कराता हुआ उनके पास अपने सूटकेस के ऊपर बैठ गया।
महाशयजी ने कहा, 'आप दिल्ली में कहीं मुलाज़िम हैं?'

'जी नहीं।'
'तब आप क्या करते हैं, आप खद्दर पहने हैं, क्या आप राजनीतिज्ञ हैं?'

'पहले था, अब नहीं के बराबर हूँ।'
'वह कैसे?'

इस प्रश्न के उत्तर में महेंद्र ने परम क्लांति का भाव दिखाते हुए कहा, 'अरे साहब, सुन के क्या कीजिएगा। व्यर्थ में आपके संस्कारों को आघात पहुँचेगा। इस चर्चा को हटाइए और किसी अच्छे विषय की चर्चा चलाइए।'
स्वभावत: चश्माधारी का कौतूहल बढ़ा। उन्होंने आग्रह के साथ कहा, 'फिर भी ज़रा सुनें तो सही। आख़िर कौन-सी ऐसी बात हो गई।'

महेंद्र की सुप्त स्मृतियाँ तिलमिला उठीं थीं। कनखियों से उसने देखा, प्राय: अंधकार में बैठी हुई मायाविनी महिला का ध्यान उसी की ओर था। पल में उसके मानसिक चक्षुओं के आगे उसके सारे विगत जीवन के व्यर्थता के दु:खद संस्मरणों की झाँकी चित्रपट पर क्रम से परिवर्तित होने वाले चित्रों की तरह भासमान होने लगी। भाव के आवेश में आ कर उसने कहा, 'अच्छा तो सुनिए। ग्यारह वर्ष से ले कर तीस वर्ष तक की अवस्था तक गाँधी के सिद्धांतों के पीछे पागल हो कर, भूखों रह कर, पग-पग ठोकरें खा कर, समाज तथा परिवार की फटकारें सह कर, जीवन के सब सुखों को अपने ध्येय के लिए तिलांजलि दे कर, राष्ट्रीय आदर्श को ब्रह्मतत्व से भी अधिक महत्व दे कर सच्ची लगन से अपनी सारी आत्मा को निमज्जित करके देश का काम किया। तीन बार काफ़ी अवधि के लिए जेल में सड़ता रहा, बार-बार पुलिस के डंडे सर पर पड़ते रहे। ज़मीन-जायदाद कुर्क हो गई, माता-पिता अपनी कपूत संतान के कारण तबाह हो कर मानसिक और शारीरिक पीड़ा की पराकाष्ठा भोग कर चल बसे, पत्नी तड़प-तड़प कर अपने भाग्य को कोसती हुई मर गई। फिर भी मैं राष्ट्र से कल्याण के परम ध्येय को स्त्री, परिवार, आत्मा और परमात्मा से बहुत ऊँचा मानता हुआ सच्ची लगन से काम करता रहा। जब अंतिम बार जेलख़ाने में बंदी मियाद पूरी करने के बाद थका-माँदा मन तथा शरीर से क्लिष्ट और क्लांत हो कर मैं बाहर आया, तब एक-एक करके उन स्नेही जनों की स्मृतियाँ मेरे मन में उदित हो-हो कर व्यक्त होने लगीं, जिनकी मैं सदा अवज्ञा करता आया था। अपनी पत्नी से मैंने जीवन में शायद दो दिन भी घनिष्ठता से बातें न की होंगी। जब मैं बाहर रहता था, तो उसके पत्र बराबर मेरे पास आते रहते थे और मैं सरसरी दृष्टि से पढ़ कर अवज्ञा से फाड़ कर फेंक देता था। एक या दो बार से अधिक मैंने उसके पत्रों का उत्तर नहीं दिया और दो बार जो उत्तर दिया था, वह भी चार पंक्तियों में बिल्कुल रूखे-सूखे ढंग से। अब जब मैं अपने को सारे संसार में अकेला, स्नेह तथा संवेदना से वंचित, असहाय तथा निरुपाय अनुभव करने लगा तो उसकी भोली-भाली, सकरुण, स्नेह की वेदना से भरी सहज सलोनी मूर्ति प्रतिपल मेरी आँखों के आगे भासित होने लगी। उसके पत्रों में सरल शब्दों में वर्णित कातर व्याकुलता के हाहाकार की पुकार मानो मेरी स्मृति के अतुल गह्वर में दीर्घ सुप्ति की घोर जड़ता के बाद अकस्मात जागरित हो कर मेरे हृदय पर जलते हुए अंगारों के गोलों से आघात करने लगी। अपने जीवन में कभी किसी बात पर नहीं रोया था। माता-पिता तथा पत्नी, किसी की मृत्यु पर आँसू की एक बूँद मेरी आँखों से न निकली थी। अब रह-रह कर उन लोगों की याद में बिलख-बिलख कर मैं बार-बार रो पड़ता। मेरी

स्नेहशील पतिपरायण पत्नी की करुण पुण्यछवि उज्ज्वल नक्षत्र की तरह मेरी आँखों के आगे स्पष्ट भासमान होने लगी। रह-रह कर मेरा जी विकल हो उठता था और मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता, जैसे मेरे हृदय में किसी के निष्कलंक सुकुमार प्राणों की पैशाचिक हत्या का अपराध पाषाण-भार की तरह पड़ा हो। बहुत दिनों तक इस नृशंस अपराध की भयंकर अनुभूति का भूत मेरी आत्मा को अत्यंत निष्ठुरता से दबाता रहा। अब भी यह भौतिक आतंक कभी-कभी मेरे मन में जागरित हो उठता है। फिर भी अब मैंने अपने मन को बहुत समझा लिया है और जीवन को एक नई दृष्टि से नए रूप में देखने लगा हूँ और साधारण से साधारण घटना भी कभी-कभी मेरे मन में एक अलौकिक आनंद का आश्चर्य उत्पन्न करने लगती है। किसी स्त्री को देखते ही अब मेरे हृदय में एक श्रद्धा-पूर्ण उत्सुकता का भाव जाग पड़ता है। ऐसा मालूम होने लगता है, जैसे अपने जीवन में पहले स्त्री को देखा भी न हो, अब पहली बार इस आनंददायिनी रहस्यमयी जाति के अस्तित्व का अनुभव मुझे हुआ हो।'

महेंद्र का लंबा लेक्चर समाप्त होते ही चश्माधारी सज्जन 'हा हा' करके ठठा कर हँसते हुए बोले, 'आप भी बड़े मज़े के आदमी हैं। ख़ूब!' यह कह कर वह बेंच पर आराम से लेट गए और उन्होंने आँखें बंद कर लीं। थोड़ी देर बाद वह ज़ोरों से ख़र्राटे लेने लगे।

एक लंबी साँस लेते हुए महेंद्र ने प्राय: अंधकार में अस्पष्ट झलकती हुई गुलाबी साड़ी की ओर देखा। दो आँखों की मार्मिक दृष्टि से तीव्र मोहकता उस अर्द्ध अंधकार में भी विस्मित वेदना की उत्सुक उज्ज्वल रेखाओं को विकीरित कर रही थी। महेंद्र पुलक-विह्वल हो कर मंत्र-मुग्ध-सा बैठा रहा।

घंटी बजी, दिल्ली को जाने वाली गाड़ी के आने की सूचना देते हुए सिग्नल डाउन हुआ। सामने रक्त आकाश-द्वीप के बदले हरे रंग का प्रकाश जल उठा। यह हरित आलोक महेंद्र के मानसपट में साड़ी के गुलाबी रंग के साथ मिल कर एक स्निग्ध-शुचि सौंदर्य-लोक का सृजन करने लगा।

थोड़ी देर में दूर ही से गाड़ी का सर्चलाइट दिखाई दिया। चश्माधारी महाशय महेंद्र के जगाने पर फड़फड़ाते हुए उठे। कुलियों ने सामान सँभाल लिया। भक-भक करती हुई गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ लगी। बड़ी भीड़ थी। चश्माधारी सज्जन को महिलाओं के साथ कुली लोग इंजन के उल्टी ओर बहुत दूर तक ले गए। कहीं स्थान न पा कर अंत में एक डिब्बे में ज़बर्दस्ती घुस गए। महेंद्र भी उन लोगों के साथ-साथ जा रहा था पर जिस डिब्बे में वे लोग घुसे, उस डिब्बे

में स्थान का निपट अभाव देख कर वह विवश हो कर एक दूसरे डिब्बे में चला गया। वहाँ भी काफ़ी भीड़ थी। किसी प्रकार उसने अपने बैठने के लिए थोड़ा-सा स्थान बनाया।
गार्ड ने सीटी दी। गाड़ी चल पड़ी। महेंद्र के मस्तिष्क में नाना अस्पष्ट भावनाएँ चक्कर काटने लगीं। दो दिन से उसे नींद नहीं आई थी। आज भी वह अभी तक सो नहीं पाया। इसलिए सोचते-सोचते वह ऊँघने लगा। ऊँघते हुए उसने देखा कि गुलाबी रंग की साड़ी द्रौपदी के चीर की तरह फैलती हुई अकारण सारे आकाश में छा गई है। सहसा दो स्थानों पर वह गगनव्यापी साड़ी फटी और उन दो छिद्रों से हो कर दो वेदनाशील, तीक्ष्ण, उज्ज्वल आँखें तीर की तरह प्रखर वेग से उसकी ओर धावित हो कर एक रूप में मिल कर एक बड़ी आँख के आकार में परिणत हो गईं। वह बड़ी आँखें उसके शरीर को छेद कर उसके हृत्पिंड को छू कर फिर ऊपर आकाश की ओर तीर की तरह छूटीं और आकाश में फैली हुई गुलाबी साड़ी में जा लगीं और फट कर फिर से दो सुंदर, किंतु करुणा-विकल आँखों के आकार में विभक्त हो गईं।

टुँडला स्टेशन पर गाड़ी ठहरने पर महेंद्र पूर्णत: सचेत हो कर बैठ गया। चश्माधारी महाशय दोनों महिलाओं को साथ ले कर कंपार्टमेंट से बाहर उतरे और सामान को कुलियों के हवाले करके उनके साथ बाहर फाटक की ओर चले। महेंद्र ने अपने कंपार्टमेंट से अपनी विश्वविजयिनी को देखा। वह इस उत्सुकता में था कि एक बार अंतिम समय के लिए दोनों की आँखें चार हो जावें, पर न हुईं और गुलाबी साड़ी से आवृत सजीव प्रतिमा व्यस्त विह्वल-सी आगे को निकल गई।
टुँडला से गाड़ी छूटने पर महेंद्र के कानों में चश्माधारी सज्जन के ठठा कर हँसने का शब्द गूँजने लगा। उसके अदृष्ट का चिर व्यंग्य पुकार मानो बार-बार कहता था— हा! हा! आप भी बड़े मज़े के आदमी हैं : ख़ूब!

*****

स्रोत : पुस्तक : हिंदी कहानियाँ (पृष्ठ 142) संपादक : जैनेंद्र कुमार रचनाकार : इलाचंद्र जोशी प्रकाशन : लोकभारती प्रकाशन संस्करण : 1977